अरुणाचल केंद्रित लेखन और नंद किशोर पाण्डेय

हरीश कुमार शर्मा

राजीव गांधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग को प्रोफेसर नंदकिशोर पांडेय एक वरदान की तरह मिले। उनका इस विभाग के लिए योगदान अप्रतिम है। विभाग के माध्यम से उन्होंने अरुणाचल प्रदेश में हिंदी के विकास के लिए, विशेषकर उच्च शिक्षा में हिंदी के विकास के लिए जो कुछ किया; वह अमिट है, अविस्मरणीय है। उन्होंने विद्यार्थी नहीं, भावी शिक्षक तैयार किए। रचनाकार तैयार किए। आज उनके कई शिष्य रचनात्मकता की अच्छी-खासी ऊँचाइयों को स्पर्श कर चुके हैं, परंतु उनमें लेखन का प्रारंभिक आत्मविश्वास और उत्साह पैदा किया प्रो. नंदकिशोर पांडेय ने। उन्होंने विभाग से 'अरुण प्रभा' पत्रिका की शुरूआत की। उनके लिखने के लिए बहुतेरे मंच थे। स्वयं विश्वविद्यालय से एक शोध पत्रिका निकलती थी, जिसमें हिंदी के लिए भी एक कोना छेका रहता था। उनके कुछ लेख उसमें प्रकाशित भी हैं। मगर इससे उनका उद्देश्य पूरा नहीं होता था। हिंदी-लेखन हेतु उसकी एक सीमा थी। जिसके कारण वे स्वयं तो लिख सकते थे, पर अपने विद्यार्थियों को एक व्यापक मंच नहीं दे सकते थे। साथ ही अरुणाचल से संबंधित सामग्री का भी उतने बड़े पैमाने पर प्रकाशन उसके माध्यम से नहीं हो सकता था, जैसा वे चाहते थे। अतः उन्होंने हिंदी में एक स्वतंत्र शोध पत्रिका निकालने के लिए सफल प्रयास किया। कहा जा सकता है कि 'अरुण प्रभा' उन्होंने अपने लिए नहीं, अरुणाचल में हिंदी-लेखन के नवोदय के लिए विशेषकर निकाली। अरुणाचल प्रदेश की रचनाधर्मिता को आगे लाने के लिए तथा देश की रचनाधर्मिता से अरुणाचल के अपने विद्यार्थियों को परिचित कराने के लिए निकाली। उन्होंने इसमें अपने विद्यार्थियों को प्रोत्साहित कर उनसे तो लिखवाया ही, विश्वविद्यालय के अन्य प्रतिष्ठित विद्वानों से भी हिंदी में लिखवाया या उनसे अंग्रेजी में लिखवाकर हिंदी में अनुवाद करके छपवाया। उनके समय में 'अरुण प्रभा' के भले ही दो अंक निकल सके, लेकिन उनके विभागाध्यक्ष रहने के दौरान प्रकाशित हुआ दूसरा संयुक्तांक, जो कि अरुणाचल पर केंद्रित था; आज भी एक मानक संदर्भ-स्रोत है। तब अरुणाचल से हिंदी में पत्रिका निकालना आसान काम नहीं था। हिंदी में टाइप करने वाला भी कोई ढूँढ़ने से नहीं मिलता था। अतः इस कार्य की कठिनता को समझा जा सकता है।

अरुणाचल-केंद्रित लेखन की बात करें तो प्रो. नंदकिशोर पाण्डेय का लिखने से भी अधिक महत्त्व लिखवाने को लेकर है। उनके समय में 'अरुण प्रभा' के दो अंक प्रकाशित हुए, जिनमें से एक अरुणाचल विशेषांक के रूप में था। आरा से निकलने वाली एक पत्रिका 'जनपथ' का भी अरुणाचल विशेषांक उनके अतिथि संपादन में निकला। 'अरुण प्रभा' का प्रवेशांक सन् 2001 में प्रकाशित हुआ। पत्रिका की दिशा का संकेत तत्कालीन कुलपति कमल कांत द्विवेदी के संदेश से स्पष्ट हो गया था- ''आप 'अरुण प्रभा' के प्रवेशांक में ही राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर के विद्वानों का लेख छाप कर प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। अरुणाचल पर भी उल्लेखनीय सामग्री प्रकाशित करने से पत्रिका अवश्य संग्रहणीय बनेगी। महाविद्यालयीय प्राध्यापकों की भागीदारी से पत्रिका का क्षेत्र व्यापक होगा।'' अरुणाचल विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग तथा 'अरुण प्रभा' से यहाँ के लोगों की क्या अपेक्षा थी, इसको भी इसी प्रवेशांक में प्रकाशित विश्वविद्यालय के उस समय के

कुलसचिव श्री जोराम बेगी के संदेश में व्यक्त इन विचारों से समझा जा सकता है- ''अरुणाचल विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के ऊपर अरुणाचल में हिंदी साहित्य ही नहीं, हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार तथा संवर्धन का भी गुरुतर दायित्व है। अरुणाचल की जनजातीय संस्कृति, पारिवारिक-सामाजिक व्यवस्था आदि को भी हिंदी माध्यम से प्रस्तुत करने और देश के शेष भागों से परिचित कराने का दायित्व भी इस विभाग के ऊपर है।'' कहना न होगा कि प्रो. नंदकिशोर पांडेय की अगुवाई में विभाग ने इस दायित्व को स्वीकारा और पूरी गंभीरता और सफलता के साथ इसका निर्वहन किया। हिंदी विभाग से 'अरुण प्रभा' का प्रकाशन तो आरंभ हुआ ही, स्थानीय बोलियों और उनमें मौखिक रूप से उपलब्ध लोक साहित्य पर शोध कार्य भी आरंभ हुआ।

यह भी हिंदी के आचार्यों के लिए कोई सहजता से गले उतर जाने वाली बात नहीं थी। दूसरी भाषाओं में लिखे साहित्य के हिंदी अनुवाद पर सीधे शोध करने की परंपरा हिंदी में नहीं रही है। यह माना जाता रहा है कि या तो हिंदी के साथ तुलनात्मक रूप में उस पर कार्य हो सकता है या फिर अनुवाद विज्ञान की दृष्टि से उसका मूल्यांकनपरक अध्ययन। और, अरुणाचल की उन बोलियों पर कार्य, जिनका संविधान की अष्टम अनुसूची में स्थान भी नहीं है! अरे, राम-राम! जब अभी तक इस पर मुँह बिचकाने वाले और काम में अड़ंगा लगाने वाले लोग मिल जाते हैं तो उस समय तो और भी कठिनाई रही होगी, जिसे समझना मुश्किल नहीं है। राजीव गांधी विश्वविद्यालय में विभागीय शोध समिति से स्वीकृत होने के पश्चात शोध प्रारूप को विश्वविद्यालय के बाहर के तीन विशेषज्ञ विद्वानों के पास समीक्षा और अनुमोदन हेतु भेजे जाने का नियम है। देश भर के अलग-अलग विद्वानों के पास यह प्रारूप जाता है और स्वीकृति के लिए कम-से-कम दो का सकारात्मक अनुमोदन अनिवार्य है। अभी हाल ही में एक प्रोफेसर ने एक शोध प्रारूप को यह लिखकर नकार दिया कि इस रूप में इस पर शोध कार्य की अनुमति नहीं दी जा सकती। और कारण? कारण वही कि यह अरुणाचली लोक साहित्य पर है, जो हिंदी से सीधे संबंधित नहीं है; क्योंकि अरुणाचल की बोलियाँ हिंदी के अंतर्गत नहीं आतीं। दुखद तो यह कि वे सज्जन संभवतः पूर्वोत्तर के ही किसी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रोफेसर थे। यद्यपि उनके ऐसा लिखने से कुछ बिगड़ा नहीं, क्योंकि दो अन्य लोगों की रिपोर्ट सकारात्मक थी। स्वीकृति देने वाले वे अन्य दो विशेषज्ञ भी आखिर हिंदी के ही प्रोफेसर थे! हम लोगों ने अपने कुलपति जी को यह बात बताई तो वे भी नाराज हुए और कहा कि ऐसे लोगों को आगे से काली सूची में डालिए। कहने का अभिप्राय यही है कि जब आज के समय में ऐसा सोचने वाले लोग मौजूद हैं, तब जब नंद किशोर पाण्डेय जी के समय इसकी शुरूआत की गई होगी तब कितनी कठिनाइयाँ आई होंगीं। लेकिन, उन्होंने यह किया। हम लोग तो उन्हीं के बनाए पदचिन्हों पर चल रहे हैं।

बहरहाल हिंदी में अरुणाचली लोक साहित्य और उसके माध्यम से अरुणाचली समाज, संस्कृति और भाषा पर अध्ययनों की शुरूआत शोध कार्य में हुई और कई अच्छे शोध-प्रबंध सामने आए। यह परंपरा अब भी जारी है। बात यह है कि अरुणाचल प्रदेश में निवास करने वाली शताधिक जनजातियों के पास अपनी-अपनी ऐसी जनभाषाएँ हैं जिनकी अपनी लिपियाँ न होने से वे बोली तक ही सीमित रह गईं, भाषा का दर्जा न पा सकीं। जबकि इन जनजातियों की सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक अभिव्यक्तियाँ इनमें हुई हैं। यह स्थिति अरुणाचल की बोलियों के ही साथ नहीं है, पूर्वोत्तर की अन्य अनेकानेक बोलियों के साथ भी है। इतना ही नहीं भारत भर में भी ऐसी बहुत सी बोलियाँ मिल जायेंगीं। तो, उनका साहित्य कैसे सुरक्षित हो, किसमें संरक्षित हो? किस भाषा

में उनका अध्ययन-मनन हो? उनका वैशिष्ट्य कैसे उजागर हो? कौन सी लिपि उनके लिखित रूप प्राप्त करने की वाहक बने?

इधर की लगभग सभी जनजातियों और उनके साहित्य पर प्रारंभिक रूप में कुछ काम हो सका तो वह अंग्रेजी में। अतः स्वाभाविक ही रोमन लिपि को भी इन बोलियों की अभिव्यक्तियाँ लिखित रूप में लाने के लिए अपना लिया गया। अब सब लोग यह तो चाहते हैं कि साहब, ये बोलियाँ रोमन के बजाय देवनागरी में लिखी जायें, पर कुछ संकुचित मनोवृत्ति वाले आचार्य यह नहीं चाहते कि उन्हें हिंदी से भी जोड़ा जाए। मतलब कि, आप उन्हें अपनी लिपि तो देना चाहते हैं, पर उन्हें अपनी भाषा नहीं देना चाहते या कि भाषा में नहीं लेना चाहते हैं। यह क्या बात हुई? ठीक है इन बोलियों का हिंदी से प्रकृत्या वैसा संबंध नहीं है, जैसा अवधी, भोजपुरी, ब्रज, मारवाड़ी, निमाड़ी, गढ़वाली आदि का है; परंतु अरुणाचल जैसे प्रदेश, जिन्होंने बोलचाल के स्तर पर हिंदी को अपनी भाषा के रूप में अपना लिया है- तो उनकी बोलियाँ कहाँ जायें? किधर उनकी गिनती हो? इस बात को समझते हुए पांडेय सर के समय विश्वविद्यालय में अरुणाचली लोक साहित्य पर हिंदी में शोध कार्यों का सफल सिलसिला शुरू हुआ, जो आज और भी अप्रतिहत गति से जारी है।

अरुणाचल जैसे प्रदेश, जिसने हिंदी को अपनी संपर्क-भाषा के रूप में आत्मसात कर लिया है और जहाँ पठन-पाठन के लिए तो हिंदी का भरपूर उपयोग हो ही रहा है, लेखन भी आरंभ हो चुका है, वहाँ की बोलियों को तकनीकी दृष्टि से बहुत सही तर्क नहीं होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से हिंदी की ही बोलियाँ मानकर उन पर काम होना चाहिए और हो भी यही रहा है। होना तो यह चाहिए कि यदि किसी भी भारतीय भाषा का साहित्य हिंदी में अनूदित रूप में उपलब्ध है, तो उस पर भी शोध के द्वार विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों को खोलने चाहिए। राजीव गांधी विश्वविद्यालय इस दिशा में भी अपने कदम पहले ही आगे बढ़ा चुका है। साहित्य का शोध विज्ञान और गणित का शोध नहीं है कि एक-एक अक्षर का उसमें ऐसा महत्त्व हो कि वह इधर से उधर हो गया तो सब परिणाम बिगड़ जाएगा और अर्थ के बजाय बहुत अनर्थ हो जायेगा। साहित्य का लक्ष्य भी समाज होता है और शोध तथा आलोचना का भी साहित्य के माध्यम से अंततः लक्ष्य समाज ही होता है। साहित्य के द्वारा हम उसमें अभिव्यक्त समाज विशेष की प्रवृत्तियों को समझते हैं, उनका अध्ययन करते हैं और निष्कर्ष निकालते हैं। इसलिए मूल और अनुवाद से यहाँ बहुत ज्यादा अंतर नहीं पड़ता।

अस्तु, हम बात कर रहे थे हिंदी में अरुणाचली साहित्य, समाज और भाषा को लाने की। इसके लिए विभाग में शोध-कार्यों का जो क्रम आरंभ हुआ वह तो हुआ ही; 'अरुण प्रभा' पत्रिका के द्वारा भी उन्होंने स्तुत्य प्रयास किया। पहले अंक के संपादकीय में उन्होंने लिखा- ''..हिंदी के लिए यह एक व्यापक संभावनाओं वाला प्रांत है। वर्तमान में अरुणाचल प्रदेश से हिंदी की एक भी, किसी भी प्रकार की कोई पत्रिका नहीं निकल रही है। कभी कोई निकली थी, अब बंद हो गयी। हिंदी विभाग ने यह महसूस किया कि यहाँ की कोई हिंदी पत्रिका होनी चाहिए। ऐसा विचार करने के पश्चात् हिंदी विभाग ने ही एक शोध और आलोचना की अर्द्धवार्षिक पत्रिका निकालने का निश्चय किया है।..'' 'प्रवेशांक' सामान्य था। किसी विशेषांक के रूप में नहीं था। फिर भी उसमें अरुणाचल से संबंधित कई लेख प्रकाशित हुए। 'उदयाद्रि से अरुणाचल' पूर्वोत्तर से बहुत प्रतिष्ठित विद्वान के रूप में मान्य प्रो. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' का लिखा निबंध है, जो इस अंक के प्रथम आलेख के रूप में प्रकाशित है। मागध जी सचमुच के विद्वान थे और उनकी विद्वता का लाभ संपादक ने अपने पाठकों को दिलाया

है। विभिन्न प्राचीन शास्त्रीय, धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रंथों का हवाला देते हुए उन्होंने इस लेख में अरुणाचल का इतिहास तो प्रस्तुत किया ही है, उसका अति प्राचीन काल से भारत से अभिन्न संबंध होने संबंधी अनेक प्रमाणों का भी ससंदर्भ उल्लेख किया है। डॉ. रमण शाण्डिल्य का 'गालो लोकोक्तियां' आलेख भी इसी अंक में प्रकाशित है, जिसमें उन्होंने गालो समाज में प्रचलित लोकोक्तियों को हिंदी भावार्थ सहित प्रस्तुत किया है। जनजातीय अध्ययन विभाग के प्राध्यापक डॉ. एम. सी. बेहरा ने अरुणाचल प्रदेश में प्रचलित जनजातीय लोककथाओं के आलोक में इस प्रांत के प्रसिद्ध हिंदू तीर्थस्थल 'परशुराम कुण्ड' का परिचय कराया है। राजनतिशास्त्र विभाग के प्रवक्ता श्री नानी बाथ ने अपने आपातानी समुदाय में मान्य धार्मिक विश्वासों एवं उनके प्रचलन की बदलती स्थिति पर प्रकाश डाला है, तो तत्कालीन हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. अनन्तकुमार नाथ ने असमीया उपन्यासों की विकास-यात्रा से परिचित कराया है। इनके अतिरिक्त प्रो. शुकदेव सिंह, प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, प्रो. धर्मदेव तिवारी, प्रो. कमलकिशोर गोयनका तथा डॉ. अवधेश नारायण मिश्र जैसे देश के बहुमान्य विद्वानों के आलेख भी इस अंक में प्रकाशित हुए। स्वयं प्रो. नंदकिशोर पाण्डेय जी का भी इसमें एक बड़े महत्त्वपूर्ण विषय 'काव्य विमर्श में कला का हस्तक्षेप' पर सुचिंतनपरक आलेख प्रकाशित है। कुछ अन्य विषयों पर अन्य लोगों के आलेखों को भी इस अंक में स्थान मिला है।

यह तो प्रवेशांक था। असली काम तो 'अरुण प्रभा' के अगले अंक में हुआ। यह अंक एक वर्ष से भी अधिक देर से आया, लेकिन सब्र का मीठा फल लेकर आया। 'अरुण प्रभा' का यह अंक सन् 2002-03 के संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित हुआ। प्रवेशांक अर्धवार्षिक रूप में निकला था, परंतु इस अंक तक आते-आते इस पर वार्षिक लिखना पड़ा। मगर विशेष बात है कि यह अरुणाचल विशेषांक था। यही इसमें देरी का कारण भी बना। नंदकिशोर पांडेय जी इसके प्रधान संपादक थे। उनके अरुणाचल में रहते 'अरुण प्रभा' के ये दो ही अंक निकल पाए (आगे एक लंबे अंतराल का व्यवधान आ गया)। परंतु, यह दूसरा अंक अरुणाचल-केंद्रित हिंदी लेखन के क्षेत्र में मील के पत्थर जैसा है। अरुणाचल प्रदेश से संबंधित किसी एक ही स्थल पर इतनी प्रमाणिक, बहुआयामी और संदर्भवान सामग्री हिंदी में पहली बार संचित हुई। अरुणाचल पर कुछ लिखने के लिए यह अंक एक संदर्भ-ग्रंथ की भाँति काम देता है। मैंने कितनी ही बार इसका उपयोग किया है। अरुणाचल पर अभी भी कुछ लिखना होता है तो एक बार इस अंक को अवश्य टटोलता हूँ।

प्रो. नंदकिशोर पांडेय ने अरुणाचल पर अनेक लेख लिखे हैं। दो लेख इस अंक में भी प्रकाशित हैं। मगर, अरुणाचल में रहते उन्होंने इस प्रदेश से संबंधित जो कुछ लिखा; उससे भी अधिक महत्त्व उनका अरुणाचल पर अन्य लोगों से और विशेषकर अपने छात्र-छात्राओं से लिखवाने को लेकर है। यह बात मैं पहले भी कह चुका हूँ। इस अंक को इस रूप में निकालने के लिए उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ा होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। इस अंक के संपादकीय में उन्होंने लिखा है- ''यह अरुणाचल विशेषांक है। द्वितीय अंक की तैयारी प्रायः पूरी हो गई थी, उसी समय विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति प्रो. तामो मिबांग ने अपने एक महत्त्वपूर्ण सुझाव में बताया कि आप इस अंक को अरुणाचल विशेषांक के रूप में प्रकाशित कीजिए। ऐसा विचार हम लोगों के मन में भी चल रहा था, लेकिन सामग्री के अभाव के कारण ऐसा कर पाना संभव नहीं लग रहा था। उस दिन से हम लोग सामग्री-संकलन के कार्य में जुट गए। अरुणाचल प्रदेश पर हिंदी में अच्छा लिखने वालों का नितांत अभाव है। निरंतर आग्रहों के फलस्वरूप मुझे कुछ शोधपत्र अंग्रेजी में प्राप्त हुए। अंग्रेजी शोध पत्रों का अनुवाद

एक श्रमसाध्य और चुनौतीपूर्ण कार्य था। इस कार्य को कई सहयोगियों तथा शोध छात्रों की मदद से पूरा किया गया।''

इस अंक की विशेषता यह रही कि इसमें अरुणाचल से संबंधित लगभग हर पक्ष पर उसके अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखवाकर लेख प्रकाशित किए गए और विशेषांक को पूर्णता प्रदान करने का कार्य किया गया। इस अंक में प्रकाशित प्रमुख विद्वानों और उनके लेखों का परिचय स्वयं संपादक के ही शब्दों में देखें- ''अरुणाचल विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ. ताई न्योरी कुशल प्रशासक होने के साथ-साथ विद्वान लेखक भी हैं। उन्होंने ईटानगर पर एक परिचयात्मक लेख लिखकर ईटानगर नामकरण के प्रति जो तरह-तरह की भ्रांतियाँ हैं, उन्हें दूर किया है। प्रो. तामो मिबांग ने आदी साहित्य पर महत्त्वपूर्ण सामग्री का संचयन कर मुझे प्रदान किया। प्रोफेसर मिबांग मूलतः इतिहास के वरिष्ठतम प्रोफेसर हैं। साहित्य, विशेषकर लोक साहित्य उनकी रुचि का विषय है। इसमें उनकी गहरी पैठ भी है। प्रो. सृष्टिधर दत्त पूरे पूर्वोत्तर के सर्वाधिक चर्चित इतिहासकारों में से एक हैं। हमारे विश्वविद्यालय के वरिष्ठतम प्रोफेसर हैं। उन्होंने अरुणाचल के इतिहास के स्रोत पर शोध पत्र लिखकर 'अरुण प्रभा' के स्तर को बढ़ाया है। प्रो. जे. सी. सोनी ने अरुणाचल में माध्यमिक शिक्षा के इतिहास और वर्तमान को व्यौरेवार प्रस्तुत किया ही है, भविष्य के लिए दिशा-निर्देश भी प्रस्तुत किया है। प्रो. सोनी अरुणाचल के वरिष्ठ शिक्षाविद हैं। प्रो. धर्मदेव तिवारी संस्कृत और हिंदी के प्रख्यात आचार्य हैं। आपने आदी भाषा के व्याकरण विशेषकर सर्वनामों पर नूतन दृष्टि से विचार कर उन तमाम लोगों की मान्यताओं को खंडित किया है जो इसे तिब्बत-बर्मीज परिवार से जोड़ते हैं। इस अंक में अरुणाचल के प्रखर विचारकों ने अपने शोध पत्र दिए हैं। डॉ. पुरा तादो अरुणाचल की पुरानी और नई पीढ़ी के बीच के सेतु हैं। ये राजनीतिशास्त्र विभाग में रीडर हैं। इन्होंने अरुणाचल की एक उन्नत जनजाति आपातानी की प्राचीन न्यायिक व्यवस्था पर महत्त्वपूर्ण शोध पत्र लिखा है। पूरे अरुणाचल में इस समय अपने प्राचीन धर्म और संस्कृति से जुड़ने का एक आंदोलन जोरों से चल रहा है। इस आंदोलन के सूत्रधार और प्रखर विचारक श्री ताना सोरेन हैं। इतिहास विभाग में प्रवक्ता हैं। उन्होंने 'दोन्यी-पोलो' से जुड़े 'न्येदर नामलो' के विकास और वर्तमान स्वरूप को शोध और प्रत्यक्ष अनुभवों के आलोक में उपस्थित किया है। डॉ. तोमो रिबा अरुणाचल प्रदेश में भूगोल के एक मान्य प्राध्यापक हैं। इन्होंने यहां की एक बड़ी और चर्चित जनजाति गालो की महिलाओं की स्थिति पर एक सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया है। डॉ रमेश चंद्र जोशी ने अरुणाचल की भौगोलिक स्थिति को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। यह पत्र अरुणाचल के भूगोल को लेकर उत्पन्न तमाम भ्रमों को दूर करता है। हमें ईटानगर संदर्भ पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष कमलेश कुमार पांडेय, प्रसिद्ध हिंदी सेवी डॉ. रमण शाण्डिल्य एवं मनहंस कुमार नील ने अरुण प्रभा के लिए अपने महत्त्वपूर्ण आलेख दिए हैं। इनके सहयोग को हम विशेष रूप से स्मरण करते हैं। महाविद्यालय के मित्रों यथा डॉ. विनोद कुमार मिश्र, डॉ मनीष शर्मा एवं हरिनिवास पांडेय ने अल्प सूचना पर यथाशीघ्र शोध पत्र लिखकर जो सहयोग पहुँचाया है उसे मैं उनके किसी भी सारस्वत अनुष्ठान के प्रति लगाव का परिचायक मानता हूँ। अरुणाचल के वरिष्ठ पत्रकार श्री फणिभूषण दास गुप्त ने यहां की पत्रकारिता के विकास को क्रमवार प्रस्तुत किया है। दास गुप्त जी यहाँ पीटीआई के मैनेजर रहे हैं। इतने वरिष्ठ कलम से लिखा गया यह लेख इस पत्रिका के लिए उपलब्धि है। अरुणाचल के दिवंगत उपन्यासकार माननीय लुम्मेर दाई की पत्नी श्रीमती नान्यी

दाई ने मेरे आग्रह को स्वीकार करते हुए दाई जी के अंतिम उपन्यास पर श्रद्धांजलि स्वरूप इस अंक के लिए लिखा है। यह उनके सद्भाव और हिंदी प्रेम का प्रतीक है।''

इस प्रकार प्रदेश के इतिहास, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता, समाज, धर्म, भाषा, साहित्य, कला, लोक-विश्वास, त्योहार, परंपराएं आदि सभी विषयों पर उनके जानकार नामचीन लोगों से आलेख एकत्र कर प्रकाशित किए गए। सबसे अच्छी और बड़ी बात इस अंक की यह है कि इसने पहली बार अरुणाचली विद्यार्थियों-शोधार्थियों को हिंदी में लिखने का हौसला दिया। इस अंक के लेखक-लेखिकाओं में जोराम यालम, जोराम आनिया, ओकेन लेगो, तेची उपेन तारा- ये वे नाम हैं जिनके सबके नाम के साथ अब डॉक्टर लग चुका है और ये सब विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में प्राध्यापक-प्राध्यापिका के रूप में तो कार्यरत हैं ही, एक अच्छे लेखक-लेखिका के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। इस अंक के संपादकीय में प्रो. पांडेय ने लिखा है कि '' 'अरुण प्रभा' अरुणाचल प्रदेश में मात्र एक पत्रिका नहीं है, एक आंदोलन है।'' सचमुच ही यह एक आंदोलन सिद्ध हुआ। जो लोग अंग्रेजी में लिखते थे, उनके लेखन को हिंदी में लाकर उनकी रुचि हिंदी की ओर कुछ जागृत इस पत्रिका के माध्यम से की गई। जिन छात्रों का कभी कहीं कुछ छपा नहीं था, शायद पहले लिखा भी न हो; उनमें लिखने और छपने का चाव इस पत्रिका ने पैदा किया। इन लोगों ने लिखा भले पहली बार हो, छपे भले वे पहली बार किसी शोध-पत्रिका में हों; पर यथार्थ यह है कि उनके लेखों को देखकर यह अहसास होता नहीं है कि वे नवप्रशिक्षुओं द्वारा लिखे गए हैं। अतः इस प्रशिक्षण हेतु तथा उनके लेखन को तराशने में एक अध्यापक और संपादक- दोनों रूपों में उनकी भूमिका को समझा जा सकता है।

इस अंक में स्वयं डॉ. नंदकिशोर पांडेय के भी अरुणाचल से संबंधित दो लेख प्रकाशित हैं। अंक में पहला लेख न्यीशी जनजाति की पूजा-पद्धति और उसके प्रकारों से संबंधित है। यह अरुणाचल प्रदेश की सबसे बड़ी जनजातियों में से एक है। यह जनजाति अरुणाचल प्रदेश में अपनी जनसंख्या और प्रभाव दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। दोन्यी-पोलो पूजक आबोतानी परिवार की इस जनजाति में विभिन्न समस्याओं एवं अवसरों के अनुसार जो पूजा की विधियाँ प्रचलित हैं, उनको लेख का विषय बनाया गया है। लेखक के ही शब्दों में इस लेख की विषयवस्तु का परिचय देखें- ''न्यीशी जनजाति का विभिन्न प्रकार की पूजा और मंत्रों में बहुत विश्वास है। न्यीशी में पुजारी को न्यूब कहते हैं। बड़ी पूजा में मुख्य पुजारी के साथ सहायक पुजारी भी होता है। यह व्यक्तिगत स्तर पर भी कुछ पूजा संपादित करते हैं। प्रकृति के साथ इनका घनिष्ठ संबंध है। इनकी मान्यता है कि व्यक्ति जब भोजन करता है तो उस समय उस पर कई प्रकार की दृष्टियाँ आ पड़ती हैं। इसलिए भोजन प्रारंभ करने से पूर्व अन्न के कुछ कण विभिन्न दिशाओं में फेंकना चाहिए। कुछ लोग अभी भी ऐसा करते हैं। इनके यहाँ कई प्रकार की पूजा होती है। पूजा में विभिन्न प्रकार के मंत्रों का उपयोग होता है। अलग-अलग बीमारियों के लिए अलग-अलग पूजा है। कुछ पूजा व्यक्तिगत उन्नति से जुड़ी हुई है तो कुछ पूजा शत्रु के नाम से। इस शोध पत्र में न्यीशी जनजाति द्वारा संपन्न की जाने वाली पूजा का वर्णन किया गया है। पूजा में प्रयुक्त पूजा-द्रव्य और अभिचार का भी विवेचन है। पूजा करवाने के कारणों का भी उल्लेख है।''

इस आलेख में प्रेतात्मा उतारने, शक्ति प्राप्त करने, सांसारिक रोगों से मुक्त होने, परिवार में शक्ति-वृद्धि एवं समृद्धि के लिए, पारिवारिक-सामाजिक उन्नति के लिए, न्योकुम त्योहार के अवसर पर, अपाहिज बच्चों को ठीक करने तथा उन्हें अपाहिजपन से बचाने के लिए, जानवरों के स्वास्थ्य एवं संरक्षण के लिए, महामारी से

बचाव के लिए, विष उतारने के लिए, अदृश्य सांसारिक पहरेदारों को प्रसन्न कर उनसे अपने रक्षण हेतु, शाप-मुक्ति हेतु, कसम-मुक्ति हेतु मृत्योपरांत आत्मा की शांति हेतु, पंजिका तथा भविष्य देखने हेतु जो भिन्न-भिन्न प्रकार की पूजाएँ न्यीशी जनजाति में कराए जाने का नियम है, उनका विवेचन किया गया है। यह पूजाएँ न्यूब (पुजारी) द्वारा संपन्न कराई जाती हैं। इन ''पूजाओं और उससे संबंधित मंत्रों पर न्यीशी जनजाति का बहुत विश्वास है। ये अपने पुजारियों को बहुत आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। इनका पुजारी इस जनजाति के रीति-रिवाजों और विभिन्न प्रकार की बीमारियों तथा उनकी पहचान कर उपर्युक्त मंत्रों का प्रयोग करने में दक्ष माने जाते हैं। आज की न्यीशी जनजाति विकसित होती चिकित्सा सुविधाओं का भी उपयोग करने लगी है।''

इन समस्त प्रकार की पूजा-रीतियों का बड़ा प्रमाणिक विश्लेषण इस आलेख में किया गया है। एक गैर जनजातीय व्यक्ति को इतनी सूक्ष्मता के साथ इस विषय को प्रस्तुत कर पाना सहज नहीं रहा होगा। परंतु, उन्होंने विषय को प्रामाणिक बनाने के लिए न्यीशी जनजाति के गहन जानकार विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति श्री जोराम बेगी के सहयोग से इसे पूर्णतः प्रामाणिक बना दिया है। न्यीशी समाज की इन पूजा-पद्धतियों के बारे में पढ़कर कहीं-कहीं अपने क्षेत्र में प्रचलित पूजा-पद्धतियों की भी याद आती आती चलती है, जैसे- प्रेत-मुक्ति से संबंधित पूजा। ''मंत्र प्रारंभ करने के पहले और मंत्र प्रारंभ होने के बाद बीच-बीच में जब पुजारी प्रेत ग्रसित व्यक्ति से बात करता है तो वह व्यक्ति प्रेतात्मा के रूप में जवाब देता है। मंत्रों के प्रभाव के कारण जब प्रेतात्मा शरीर छोड़कर चली जाती है तब प्रेतग्रस्त व्यक्ति गहरी नींद में सो जाता है। अगर ऐसे व्यक्ति के लिए पुजारी को बुलाकर शीघ्रता से मंत्र-तंत्र न किया जाए तो व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है।'' ऐसे ही भोजन करते करने के पूर्व अन्न के कुछ कण विभिन्न दिशाओं में फेंकने के बारे में जानकर एक सामान्य हिंदू द्वारा खाना आरंभ करने से पहले थाली में से कुछ कर निकाल कर भोग के रूप में रखा जाना याद आ आता है।

दूसरा आलेख आदी जनजाति के भाषा-साहित्य से संबंधित है, जिसमें आदी भाषा और उसके साहित्य की एक झलक प्रस्तुत की गई है। आदी भी न्यीशी की भाँति प्रदेश की एक बड़ी जनजाति है। कहा जाए तो संख्या-बल की दृष्टि से यह दोनों प्रदेश की सबसे बड़ी जनजातियाँ हैं। आदी असल में एक बड़ा जनजातीय समूह है, जिसमें लगभग दर्जन भर उपजनजातियाँ समाहित हैं। इस जनजाति के लोग भी आबोतानी परिवार के अंतर्गत आते हैं। इनकी भाषा का नाम इनकी जनजाति के अनुसार ही आदी है, जिसको डॉ. ग्रियर्सन ने असम के तिब्बत-बर्मन परिवार की भाषा के रूप में रखा है। इस भाषा के पास भी अपनी परंपरागत लिपि न होने से यह बोली के रूप में ही समाज में प्रचलित रही। आधुनिक समय में आकर रोमन लिपि के माध्यम से जो कुछ आदी साहित्य लिखा जा सका है, उसी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विवेचन इस लेख में किया गया है। लेखक लिखते हैं- ''आदियों ने रोमन लिपि को अपनी भाषा की लिपि के रूप में अपनाया है और वे विगत तीस वर्षों से इस लिपि में लिखते आ रहे हैं। पासीघाट शहर के निकट डोंपोक गांव के निवासी स्वर्गीय ओकेप तायेंग सबसे पहले आदी लेखक हैं जिन्होंने 1947 में अपनी पहली पुस्तक 'पादाम आखोर' को प्रकाशित किया। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने रोमन लिपि को लोगों के बीच लाने और उसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया। आदियों ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। फिर भी कुछ लोगों ने इस लिपि को स्वीकार करने की दिशा में कुछ आपत्तियाँ व्यक्त कीं, इसके फलस्वरूप यह पूर्ण विकसित नहीं हो पाई।

आदी भाषा के इतिहास में 1970-71 ने एक महत्त्वपूर्ण मोड़ लिया। यह वह साल था जब आदियों ने पूर्ण रूप से रोमन लिपि को अपना लिया और कालांतर में लेखक उभरकर सामने आए। इन कई आदी लेखकों में तालोम रुकबो, तागांग ताकी, ओशोंग इरिंग, आराक मेगू, तालुक तामुक, कालिंग बोरांग और लुम्मेर दाई आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।'' इस तरह से इस लेख से आदी भाषा और साहित्य के विकास एवं स्थिति के साथ आदी भाषा के लिए रोमन लिपि के प्रयोग के इतिहास-संबंधी जानकारी भी संक्षेप में प्राप्त होती है। प्रदेश में प्रांतीय आस्था और संस्कृति के संरक्षण-संबंधी आंदोलन के जन्मदाता और वाहक के रूप में तालोम रुकबो की बड़ी प्रतिष्ठा है। प्रदेश सरकार में भाषा अधिकारी, एरिया ऑर्गेनाइजर, विशिष्ट अधिकारी (संस्कृति) आदि पदों पर रहे लेखक, कवि, कलाकार और महान समाजसेवी श्री तालोम रुकबो ने ''अपनी सृजनात्मकता और कलात्मकता को पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु तथा समाज सेवा को बल प्रदान करने हेतु.. 1976 में सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने यह महसूस किया कि आधुनिकता की हवा ने राज्य के जनजातीय लोगों के जीवन और उनकी प्रणाली को पूरी तरह प्रभावित किया है। उन्होंने पाया कि लोगों की परंपरागत जीवन शैली को आधुनिकता की हवा ने झकझोर कर रख दिया है। इसने राज्य के जनजातियों की पहचान पर प्रहार किया है। यही कारण है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में परंपरा के संरक्षण और विकास पर विशेष बल दिया है।''

इस आलेख में पांडेय जी ने तालोम रुकबो के अलावा ओशोंग इरिंग, तागांग ताकी आदि लेखकों के अवदान पर तो संक्षिप्त चर्चा की ही है, 'आदी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक समाज', 'आदी आगम केबांग' (आदी साहित्य सभा) और 'दोन्यी पोलो येलम केबांग' जैसी संस्थाओं द्वारा प्रकाशित दर्जन भर पुस्तकों की सूची भी प्रस्तुत की है। लेख के अंत में कई कवियों तथा उनके द्वारा रचित कविताओं के नामों की सूची भी प्रस्तुत की है। कुछ उद्धरण देकर रचनाओं की बानगी भी प्रस्तुत की है, जिनसे आदी भाषा के साहित्यिक-सामर्थ्य का पता चलता है। लेख में प्रस्तुत तालोम रुकबो की 'मैं पशु हूँ, मैं पक्षी हूँ' कविता के एक अंश का हिंदी भावार्थ देखें- ''हम लोगों के रहने के लिए अब जंगल नहीं रह गया है। हम लोगों के बैठने के लिए पेड़ नहीं रह गए हैं। हमारी जिंदगी समाप्त करने के बाद अब जंगल बर्बाद किए जा रहे हैं। क्या यह एक असुर की क्रूरता नहीं है? क्या यह एक राक्षसी प्रवृत्ति नहीं है?'' वस्तुतः यह आलेख विश्वविद्यालय के तत्कालीन प्रतिकुलपति प्रो. तामो मिबांग द्वारा अंग्रेजी में एकत्र की गई सामग्री के आधार पर तैयार किया गया था, जिसका उल्लेख लेख के अंत में लेखक ने कर दिया है।

राजीव गांधी विश्वविद्यालय के अपने कार्यकाल में प्रशासनिक समस्याओं के चलते प्रो. नंदकिशोर पांडेय 'अरुण प्रभा' के भले ही मात्र दो अंक निकाल पाए, परंतु उन्होंने इसकी कुछ क्षतिपूर्ति की 'जनपथ' पत्रिका के अतिथि संपादक बनकर। बिहार राज्य के आरा से अनंत कुमार सिंह के संपादन में निकलने वाली मासिक पत्रिका का सन् 2009 का दिसंबर अंक अरुणाचल विशेषांक के रूप में निकला था और इसके अतिथि संपादक थे प्रो. नंदकिशोर पांडेय। 'अरुण प्रभा' की रही-सही कसर उन्होंने पूरी की इस अंक में। इस अंक का स्वरूप कैसा बन पड़ा है और इस तरह के कार्यों का महत्त्व क्या है, इसे समझने के लिए पत्रिका के संपादक अनंत कुमार सिंह के 'पहली हराई' स्तंभ में व्यक्त विचारों को देखा जा सकता है- ''बहरहाल सामग्री के चयन में उनकी व्यापक दृष्टि का, राष्ट्रीयता का, राजभाषा के प्रति प्रेम का भाव साफ जाहिर होता है। डॉ. पांडेय जी

का पूरा प्रयास रहा है कि प्रकृति का कोप और वरदान वाले इस राज्य की वास्तविक स्थिति, यहाँ की सभ्यता, संस्कृति, रीति-रिवाज, न्याय-व्यवस्था, वहां की समस्याएँ, धारणाएँ राष्ट्र के सामने आएं।''

'जनपथ' के इस विशेषांक में पांडेय जी ने कोई लेख तो नहीं लिखा है, लेकिन विस्तृत संपादकीय लिखा है। इस संपादकीय में उन्होंने अति संक्षेप में ही अरुणाचल के इतिहास, राजनीतिक यात्रा और स्थिति, भारत के साथ प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक संबंधों के साक्ष्य, यहाँ के उत्पाद, आवागमन, इतिहास की समस्या आदि पर प्रकाश डाला है। यहाँ की बोलियों और उनके लिए अपनाई जाने वाली लिपि से संबंधित मतभेदों की चर्चा करते हुए प्रदेश में हिंदी की स्थिति पर भी उन्होंने अपनी टिप्पणी की है। लिखते हैं- ''लिपि पर बहस और प्रयास आज अरुणाचल में चरम पर है। ऐसे अरुणाचल में कक्षा एक से शोध स्तर तक हिंदी की पढ़ाई होती है। सभी अरुणाचली हिंदी बोलने में गर्व की अनुभूति करते हैं। अपना अनुभव यह है कि अरुणाचल में जो विद्यार्थी जितना अधिक सीमांत क्षेत्र से ईटानगर आता है, उसकी हिंदी उतनी ही अच्छी है। चीन सीमा से लगे हुए कई पूरे-के-पूरे गांव हिंदी में बोलते हैं। यही स्थिति भूटान और वर्मा से लगे क्षेत्रों की भी है।''

सन् 2000 में डॉ. नंदकिशोर पांडेय अरुणाचल विश्वविद्यालय में रीडर के रूप में नियुक्ति पाकर आए और फिर 2002 में हिंदी विभागाध्यक्ष बने। इस बीच में और इसके बाद उन्होंने विद्यार्थियों के हित में क्या-क्या किया, इससे संबंधित कुछ प्रमुख बातों का तब तक का लेखा-जोखा भी इस संपादकीय में प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है- ''मैंने 1 सितंबर 2000 ईस्वी में अरुणाचल विश्वविद्यालय (अब राजीव गांधी विश्वविद्यालय) में रीडर के रूप में कार्यभार ग्रहण किया तो एक-दो वर्ष पढ़ाने के पश्चात यह अनुभव किया कि यहाँ से बड़ी प्रतिभाएँ निकल सकती हैं। आवश्यकता है इन पर यथोचित परिश्रम करने की। हिंदी विभाग एक वर्ष पूर्व ही 1999 में तमाम प्रकार के विरोध, संघर्ष एवं प्रयासों के बीच प्रारंभ हुआ था। बहुत से वरिष्ठ लोगों की यह मान्यता थी कि यहाँ हिंदी कोई क्यों पढ़ेगा? यह विभाग दो-चार वर्षों में यूँ ही बंद हो जाएगा। कार्यभार ग्रहण करने के पहले ही दिन दूसरे विषयों के विद्यार्थियों ने मुझसे कहा सर यहाँ तो स्कूल और महाविद्यालयों में हिंदी वर्षों से है, किंतु अरुणाचली लेक्चरर एक भी नहीं है। यही बात कई बार कुलपतियों ने भी कही। मुझे लगा कि अरुणाचल में काम की दिशा मुझे मिल गई है। 2002 में मैं विभागाध्यक्ष हो गया। मैंने पहला काम स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर पाठ्यक्रमों में परिवर्तन का लिया। इसका चमत्कारिक असर हुआ। आज हिंदी विभाग में 27 नेट स्लेट उत्तीर्ण छात्र हैं। इनमें से पांच-छह विद्यार्थियों ने दो से तीन बार नेट की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं। आज यह कहते हुए गर्व की अनुभूति हो रही है कि तमाम अरुणाचली विश्वविद्यालय से लेकर महाविद्यालय तक हिंदी व्याख्याता पद पर कार्यरत हैं। दूसरी बार मैं 2008 में पुनः विभागाध्यक्ष बना। इस बार प्रोफेसर एवं अध्यक्ष पद से विश्वविद्यालय ने सम्मानित किया। यह एक संयोग है कि इसी के साथ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एम. फिल. प्रारंभ करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। पाठ्यक्रम निर्माण करते समय मैंने यह ध्यान रखा कि भारत के बड़े व प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों की तुलना में हमारे विद्यार्थी पिछड़ न जाएं, इसलिए पाठ्यक्रम स्तरीय होना चाहिए। आज हिंदी विभाग में एम. ए. के एक सत्र में 44 स्थान हैं। सौ के आस-पास प्राइवेट छात्र भी एम. ए. की परीक्षा देते हैं। प्रतिवर्ष दो-तीन विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में भी उत्तीर्ण होते हैं। इनमें से बहुत से विद्यार्थी भारत के तमाम विश्वविद्यालयों के हिंदी के विद्यार्थियों से कमजोर नहीं हैं। मैं यह बातें इसलिए बता रहा हूँ कि इस हिंदीतर भाषी प्रदेश में हिंदी के विकास की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। आवश्यकता उन्हें अवसर देने की है।''

इसी अंक के संपादकीय में वे लिखते हैं- ''यह अंक केवल कुछ सूचनाओं का संग्रह नहीं है। यह देश को जोड़ने का उपक्रम है। हिंदी आंदोलन का हिस्सा है। अल्पज्ञात जनजातीय समाज को हिंदीतर क्षेत्र में हिंदी माध्यम से परिचित करवाने की दिशा में महत कदम है। हिंदी विभाग की शोध पत्रिका 'अरुण प्रभा' के द्वितीय अंक के संपादकीय में मैंने लिखा था कि पहली बार अरुणाचल पर हिंदी में इतनी बड़ी मात्रा में सामग्री प्रस्तुत की जा रही है। अब यह कहा जा सकता है कि 'जनपथ' ने हिंदी में अरुणाचल पर सबसे अधिक सामग्री को प्रकाशित किया है।..'' 'जनपथ' के इस अंक में कुछ लेख और लेखक तो प्रायः वही हैं जो 'अरुण प्रभा' के अरुणाचल विशेषांक में प्रकाशित हैं। परंतु कई नये अरुणाचली लेखक-लेखिका इससे उभरकर सामने आये। जमुना बीनी, तारो सिन्दिक, पद्मावती अंगङ, डॉ. सोनम वाङमू, दोगे ङमदिर आदि ऐसे ही नाम हैं। इनके अतिरिक्त प्रो. ब्योमकेश त्रिपाठी, प्रसिद्ध नारायण चौबे, डॉ. विनोद कुमार मिश्र, डॉ. शिवानंद झा, रमेशचन्द्र चतुर्वेदी, डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय, अमरेन्द्र त्रिपाठी तथा हरीश कुमार शर्मा के अरुणाचल से संबंधित विविध पक्षों पर आलेख भी इस अंक में संकलित हैं। अंक में 'अरुणाचल प्रदेश और हिंदी' शीर्षक से लिखा गया अमरेन्द्र त्रिपाठी का विचारोत्तेजक लेख जोरदार है तो जमुना बीनी द्वारा अरुणाचल के प्रसिद्ध लेखक वाई. डी. थोंग्ची से लिया गया साक्षात्कार एवं पत्रकार प्रतुल जोशी का 'संचित कर लेना चाहता हूँ स्मृतियाँ' शीर्षक से अरुणाचल-संबंधी यात्रा-वृत्तांत पत्रिका की उपलब्धि है।

सच कहें तो उन्होंने यह आंदोलन किसी विचार या विचारधारा को फैलाने को लेकर नहीं था। यहाँ हिंदी की स्थिति सुदृढ़ करने को लेकर था। हिंदी में यहाँ अच्छे शोधार्थी, अध्यापक और रचनाकार उत्पन्न करने को लेकर था। इसमें वे कितने सफल हुए, इसके लिए कोई अलग से प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। आज राष्ट्रीय फलक पर चमकने वाले कई रचनाकार प्रदेश में तैयार हो चुके हैं और ये सब उन्हीं के दौर के उनके शिष्य-विद्यार्थी हैं। सन् 2018 में डॉ. तारो सिंदिक को अपने पहले काव्य-संग्रह के लिए हिंदी में साहित्य अकादमी का युवा पुरस्कार मिल चुका है। यह उनकी और अरुणाचल प्रदेश की ही नहीं, समूचे पूर्वोत्तर की एक बड़ी साहित्यिक उपलब्धि है; क्योंकि इससे पहले हिंदी में किसी को पूर्वोत्तर से साहित्य अकादमी नहीं मिला था। और भी रोचक बात यह कि जिस काव्य-संग्रह 'अक्षरों की विनती' पर उन्हें ये महत् सम्मान मिला, वह उनका तो प्रथम काव्य-संकलन था ही, अरुणाचल प्रदेश के किसी स्थानीय रचनाकार का भी हिंदी में प्रथम काव्य-संकलन था। राजीव गांधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष और भाषा संकायाध्यक्ष रह चुके उनके प्रिय शिष्य प्रो. ओकेन लेगो अभी पुनः हिंदी विभागाध्यक्ष हैं। 2017 में उन्हें अपनी हिंदी सेवाओं के लिए मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी के एक लाख रुपये के सम्मान से मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री के हाथों सम्मानित किया गया जा चुका है। उनकी पीएच. डी. शोधार्थी रहीं और अभी राजीव गांधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एसोशिएट प्रोफेसर डॉ. जोराम यालाम नाबाम का एक कहानी संकलन, एक उपन्यास, एक संस्मरण-संग्रह और एक आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है और वे ठीक-ठाक पहचान अपनी हिंदी जगत में बना चुकी हैं। इसी विभाग में वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर डॉ. जमुना बीनी तादर की एक आलोचना पुस्तक, एक काव्य-संग्रह, एक कहानी संग्रह तथा एक लोककथाओं का संकलन प्रकाशित हो चुका है, उन्हें कई सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है। ईटानगर कॉलेज की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. जोराम आनिया ताना को मॉरिशस में हुए विगत विश्व हिंदी सम्मेलन में तब की विदेश मंत्री स्व. श्रीमती सुषमा स्वराज द्वारा उनकी हिंदी सेवाओं के लिए 'विश्व

हिंदी सेवी सम्मान' से सम्मानित किया गया था। ईटानगर कॉलेज में ही सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्यरत श्रीमती तुम्बम रिबा का भी एक उपन्यास और एक लोककथा-संकलन प्रकाशित हो चुका है तथा अभी उत्तर प्रदेश राज्य कर्मचारी संघ, लखनऊ द्वारा एक लाख रुपये के सम्मान से उन्हें सम्मानित किया गया है। ये सभी इसका प्रमाण हैं। यहाँ के एक महाविद्यालय में सहायक प्रोफेसर ताई तुगुंग नाटककार हैं, जिनके अरुणाचली हिंदी में लिखे नाटक काफी लोकप्रिय हुए हैं। नाम और भी बहुत सारे हैं जो शीघ्र ही राष्ट्रीय पटल पर अपनी चमक बिखेरने की तैयारी में हैं। ऐसे ही प्रदेश के विद्यालयों-महाविद्यालयों में स्थानीय हिंदी अध्यापक-प्राध्यापकों की नित्य-प्रति बढ़ती संख्या भी उनकी सफलता की कहानी कह रही है। तीन तो उनके तराशे हुए पौधे विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में ही हैं, जो अब छायादार विराट वटवृक्ष बनाने की ओर अग्रसर हैं। तीनों की अपनी अलग-अलग विशेषताएं और पहचाने हैं।

'भारतीय लोक साहित्य कोश' का संपादन किया है- डॉ. सुरेश गौतम और डॉ. वीणा गौतम ने। उसके खंड-2 में अवधी, अंगिका, उर्दू, उड़िया, कन्नड़ तथा कन्नौजी के साथ अरुणाचल को भी स्थान मिला है। पृष्ठ 647 से 680 तक 34 पृष्ठ अरुणाचल को समर्पित हैं। अरुणाचल के लोक साहित्य पर लिखने का दायित्व संभाला है डॉ नंदकिशोर पांडेय ने। यह एक बड़े महत्त्व का काम उन्होंने किया है। अरुणाचल प्रदेश के बारे में बहुत अच्छी जानकारी आज भी देश के अन्य भूभाग के लोगों को नहीं है। वहाँ के समाज, संस्कृति, साहित्य और भाषाओं के बारे में तो और भी नहीं। अतः यह एक ऐतिहासिक और राष्ट्रीय महत्त्व का काम उन्होंने किया है। इस लेख में सर्वप्रथम उन्होंने अरुणाचल का संक्षेप में परिचय दिया है। अरुणाचल में लोक साहित्य का क्या महत्त्व है, जनजीवन में इसकी क्या भूमिका है और इसका अध्ययन क्यों आवश्यक है, इसके लिए इस आलेख के आरंभ में ही प्रस्तावना-स्वरूप व्यक्त उनके विचार द्रष्टव्य हैं। लिखते हैं- ''यहां जीवन लोक है, लोक जीवन है। आस्था, विश्वास, रहन-सहन, खान-पान, सृष्टि की उत्पत्ति तथा विकास, सामाजिक, पारिवारिक रिश्ते- सब कुछ लोकगीत, लोककथा, लोकमान्यता और लोकविश्वास से संचालित हैं। अरुणाचल प्रदेश भारत का एक ऐसा प्रदेश है जहाँ विज्ञान लोक में है, दर्शन लोक में है, साहित्य और संस्कृति लोक में है तथा पुराण और इतिहास भी लोक में है। तमाम प्रकार के सांस्कृतिक समूहों का एक मिलन-स्थल हिमालय की गोद में है, जहाँ सबने अपनी-अपनी आस्थाओं और मान्यताओं को यहाँ आकर मिला दिया है या अपार जल समूह में स्वतः घुल गया है। यहाँ दोन्यी-पोलो हैं, रंगफ्राह हैं, बुद्ध हैं, शिव हैं, विष्णु हैं और साथ ही दिक्करवासिनी ताम्रेश्वरी हैं। ये सभी देवी-देवता लोकमुख में हैं। इतिहास और पुराण का दबाव यहाँ नहीं चलता। अरुणाचली भाषाओं की अपनी कोई सर्वमान्य लिपि नहीं है। सब कुछ बानी है। इतिहास के सच को भी ढूँढ़ना है तो लोक से ही निकाला जाएगा।''

अपने इस आलेख में उन्होंने आदी से आरंभ कर न्यीशी, गालो, आपातानी, आका, मिजी, सुलूंग, हिलमिरी, तागिन, मोंपा, शेरदुक्पेन, खामती, सिंहफो, मेंबा और खंबा, मिशमी, फकियल, बांचू, नोक्टे, तांग्सा आदि तक प्रायः सभी प्रमुख जनजातियों का परिचय प्रस्तुत किया है। इस संक्षिप्त परिचय में उनका खान-पान, रहन-सहन, कृषि, कला, जीवन-शैली प्रथा-परंपरा, भौगोलिक स्थिति, इतिहास आदि तक बहुत सी बातें सम्मिलित हो सकी हैं। अरुणाचल और उसके जनजीवन के बारे में परिश्रमपूर्वक गहन जानकारी जुटाकर लेखक ने इसमें प्रस्तुत की है। उदाहरण के लिए देखें आपातानी जनजाति द्वारा नमक-निर्माण की पारंपरिक विधि का

कैसा स्पष्ट ज्ञान लेखक ने कराया है- ''यह जनजाति प्राचीन काल से ही कुछ पौधों की राख के साथ पानी मिलाकर नमक बनाने की कला से परिचित है। जीरो क्षेत्र में कुछ पौधे ऐसे पाए जाते हैं, जो अधिक नमकीन होते हैं। आपातानी लोग इन पौधों को टुकड़े-टुकड़े काटकर तेज धूप में सुखाए जाने के बाद उसे जलाते हैं। उसकी राख को एक पात्र में विशेष ढंग से रखकर उसमें धीरे-धीरे पानी डालते हैं। पानी रिस-रिस कर नीचे गिरता है। इस पानी को संग्रहीत कर लेते हैं। फिर एक निश्चित आँच पर पानी को जलाते हैं। इस प्रकार नमक तैयार हो जाता है। यह नमक आयोडीन-युक्त होता है। आपातानी क्षेत्र में घेंघा के रोगी नहीं मिलते हैं। इसका कारण इस वानस्पतिक नमक का प्रयोग भी बतलाया जाता है।

इसी प्रकार से तांग्सा जनजाति के गृह-निर्माण की विशेषताओं को बताते हुए भी वे लिखते हैं- ''यह जमीन पर चांग जैसा बनाकर उसके ऊपर मकान बनाते हैं। मकान बनाते समय पानी की उपलब्धता और स्रोत पर विशेष ध्यान देते हैं। इनके मकान के तीन मुख्य भाग होते हैं। सामने वाले भाग का उपयोग 'कामनरूम' या अतिथि बैठक की तरह होता है। इस कक्ष को विभिन्न त्योहारों के अवसर पर मारे गए जानवरों यथा भैंसा, सुअर आदि की खोपड़ियों से सजाकर रखते हैं। बीच वाले हिस्से को कई भागों में विभाजित कर देते हैं। इसे जुमोंग कहा जाता है। अतिथि सामने वाले हिस्से में ही बैठते हैं। मध्य भाग में उनको नहीं ले जाते हैं। पिछले भाग में वे अपने घरेलू सामानों को रखते हैं। सामने के हिस्से में आग जलाकर रखते हैं। वहाँ बैठकर बातें करते हैं। आग पर चाय आदि बनाते हैं।''

इस अध्याय का दूसरा भाग लोक साहित्य से संबंधित है। इसमें सर्वप्रथम लोकगीतों का विवेचन किया गया है। कई गीत अपने मूल रूप में हिंदी भावार्थ सहित उद्धृत किए गए हैं। इन गीतों में लोरी गीत, प्रार्थना गीत, सृष्टि की उत्पत्ति-संबंधी गीत सहित अनेक अन्य गीत भी शामिल हैं। अरुणाचली जनों की विशिष्ट जीवन-स्थितियाँ और मनोभावनाएं इनमें प्रकट हुई हैं। इनमें भावनापरक से लेकर कथापरक तक छोटे-बड़े गीत सम्मिलित हैं। अधिकतर गीतों का स्वर विषादी है। देखें एक न्यीशी गीत का भाव, जिसमें लड़की विवाहोपरांत अपने मायके को याद करती हुई अपनी मनोभावनाओं को व्यक्त कर रही है। इस गीत से जनजातीय समाज में लोगों का लोगों से पारस्परिक रागात्मक संबंध तो व्यक्त होता ही है, विवाह-पूर्व घर में लड़कियों के कृत-कर्मों की भी सूचना मिलती है। ''प्रातःकाल मुर्गी के बांग देने के साथ ही हम जगकर अपनी सहेलियों के साथ धान कूटते थे। उसके बाद जंगल में सब्जियाँ तथा लकड़ियाँ इकट्ठा करने जाते थे। अब मैं अपनी सहेलियों की अनुपस्थिति महसूस करूँगीं। उन्हें भी मेरी याद सताएगी। अब मैं अपनी सहेलियों के साथ जंगल में जाकर सब्जियाँ इकट्ठा नहीं कर पाऊँगी। यह सोच-सोच कर मुझे रुलाई आ रही है।

एक अन्य गीत में एक बूढ़ी स्त्री निराला की कविता 'स्नेह निर्झर बह गया है, रेत जो तन रह गया है' की याद दिला देती है। लेख से उद्धृत गीत के भावार्थ रूप में उस वृद्धा के कुछ निराशापूर्ण मनोभाव देखें- ''...मैंने अपने प्रारंभिक जीवन में कई नौकर खरीदे, नौकरानियाँ खरीदीं। कई बहुएँ लाई। सोचती थी तो मुझे लगता था कि मेरी खुशी का कभी अंत नहीं होगा। लेकिन अब इन लड़खड़ाते कदमों का कोई सहारा नहीं है। मैंने बहुत से बच्चों को जन्म दिया। अब सुबह आँखें खोलती हूँ तो कोई दिखाई नहीं पड़ता। शाम को भूख लगती है, लेकिन प्यार से खिलाने वाला कोई नहीं है। अब मेरे पास केवल स्मृतियाँ हैं, और लाठी है। काम करती हूँ तो हाथ काँपने लगते हैं। चलने पर पाँव लड़खड़ाने लगते हैं। मैं ठूँठ पर बैठी अकेली चिड़िया की तरह हूँ। माँ दोन्यी मुझे देखती

होगी।'' यहाँ निराला की पूर्वोक्त गीत की पंक्तियाँ- 'आम की यह डाल जो सूखी दिखी, कह रही है अब यहाँ शिख या शिखी, नहीं आते- अर्थ जीवन का नहीं, जो दह गया है'- अनायास याद आ जाती हैं।

इस विस्तृत आलेख में लोकगीतों के पश्चात् कुछ लोक कथाएँ प्रस्तुत की गई हैं, जिनमें पानी की उत्पत्ति संबंधी आदी कहानी, पानी की उत्पत्ति संबंधी गालो कहानी, सृष्टि की उत्पत्ति और केयुम केरो की कहानी, आग की उत्पत्ति से संबंधित आदी कहानी, मिथुन से संबंधित कहानी, ईटानगर तथा परशुराम कुंड से संबंधित कथा, आभूषण निर्माण से संबंधित कथा तथा जंगली कबूतर का रोना आदि कथाएँ प्रमुख रूप से प्रस्तुत की गई हैं। कुछ सपनों के शुभाशुभ फलों का उल्लेख करने के पश्चात् जनजातिवार प्रमुख लोकनृत्यों का उल्लेख किया गया है। साथ ही कुछ अरुणाचली लोक-नृत्यों का परिचय भी इस आलेख में दिया गया है। इनमें प्रमुख रूप से पोनुंग, देलंग, याकजोंग, पेण्टोमाइन, नारथोन आदि हैं। यों यह लेख एक ही स्थान पर अरुणाचल प्रदेश के लोक साहित्य, समाज और संस्कृति की काफी जानकारी देने में सफल होता है। इस तरह से देखा जाए तो जहाँ भी अवसर हाथ आया है, प्रो. नंदकिशोर पांडेय ने अरुणाचली समाज, संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि के उत्थान एवं वैशिष्ट्य-प्रकटीकरण का प्रयास किया है। अरुणाचल में रहते हुए अरुणाचल के उत्थान के प्रति वे बहुत सजग और समर्पित रहे। अरुणाचल से जाने के बाद भी उनको अपनी पूर्व कर्मभूमि का पूरा ध्यान रहा है। इसलिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक बनने के बाद उन्होंने विशेष तत्परता दिखाते हुए यहाँ की कई बोलियों के अध्येता-कोश तैयार करवाए। लोक साहित्य के संकलन की योजना पर काम आरंभ कराया पिछले दिनों स्वयं और उनके संपादन में 'अरुणाचल की लोककथाएं' नाम से एक पुस्तक प्रकाशित भी हो चुकी है।

(लेखकीय परिचय : *अरुणाचल प्रदेश के मानस और अकादमिक दुनिया से गहरे संपृक्त प्रो. हरीशकुमार शर्मा सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, उत्तर प्रदेश के कला संकाय के संकायाध्यक्ष रह चुके हैं और हिंदी विभाग के प्रोफेसर हैं। इससे पूर्व आपने राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में कई वर्षों तक अध्यापन कार्य किया है तथा विश्वविद्यालय के विभिन्न अकादमिक एवं प्रशासनिक पदों पर रहते हुए अपने दायित्वों का पूर्ण निर्वहन किया है।*

मोबा: 7983809664, ई-मेल : hksgpn@gmail.com)